लड़ाई

भुवनेश्वर

लड़ाई

चाँदपुर से गाड़ी पूरे पच्चीस मिनट लेट चली। पी.डब्ल्यू.आई. की ट्रॉली लद रही थी और स्टेशन मास्टर की दयनीय निकम्मी शकल हमारी खिड़की के सामने से निकल गई। खद्दरपोश ने अपना अखबार महारत से मोड़कर उससे हवा करते हुए खिड़की के बाहर मुँह निकाल लिया। तीसरी बार गोरखे सोल्जर ने अपना सामान ऊपर से उतारकर फिर से लगाना शुरू किया। ऊँचे-ऊँचे फौजी बैग जिसमें ताले लग सकते थे,

पीले बेलबूटोंवाला ट्रंक जिसके बेलबूटे मैले हो चले थे, चमड़े की पेटियों से बँधा हुआ बिस्तरा और नेपाली टोकरा, वह शायद छुट्टी से वापस जा रहा था - बंदूक को पोंछकर उसे रखने के लिए वह धीरे-धीरे बुदबुदाकर 'मंजिल और बट्स' पढ़ रहा था - वह बंदूक इस तरह थामे था जैसे कोई दरिन्दा हो जिसे जईफी ने पालतू बना दिया है... सिगनल के इन्तजार में गाड़ी हूँ-हूँ-हूँ करती हुई खड़ी हो गयी... और पूरा डिब्बा गुनगुना उठा। बाहर दूर के दरख्त घने नीले होकर छोटी पहाड़ियों की तरह मालूम होते थे, गाड़ी की रोशनी अभी नहीं हुई थी। खद्दरपोश ने पूरा-पूरा झुककर बाहर झाँका और फिर जैसे अपने-आपसे कह दिया - 'सिगनल नहीं है।' कोने से स्टूडेंट ने अपनी खुसटी हुई अचकन तहाकर अपने सिर के नीचे रख ली और छत की तरफ एकटक देखता हुआ धुँए के लच्छे बनाने लगा।

वह विदूषकों की तरह विचित्र मुँह बनाता था। कोई अच्छा लच्छा बन जाने पर वह सामनेवाली बेंच के कोने पर बैठी हुई महिला की तरफ विजय के साथ देखता था। महिला का पति ऊँघ गया था, पर गाड़ी के रुकते ही वह चौंककर जगे रहने की कोशिश कर रहा था। चुपचाप बैठे हुए बच्चे की तरफ एक मिनट घूरकर उसने अपनी स्त्री से एकबारगी पूछा - "इन्दर की बऊ का बप्पा बई होगा खतौली में कि वो जागी अपने सौहरे।" उसकी आवाज में एक बेवजह कर्कशता थी। महिला ने अनमने गर्दन हिलाकर एक अनिश्चित-सा जवाब दिया - गाड़ी चल दी और वह पूरे-पूरे पैर साड़ी से ढँककर बाहर झाँकने लगी।

खद्दरपोश ने जँभाई ली और अँगूठियोंवाली उँगलियाँ से चुटकी बजाई - चट, छट, च्छट। स्टूडेंट का सिगरेट खत्म हो चुका था और वह अपना पर्स निकाले उसके अन्दर उँगलियाँ डाले गिन रहा था।

अँधेरा ज्यादा हो गया था और बत्ती अब तक नहीं जली थी। पर्स को जेब में रखते हुए स्टडेंट ने कहा - "चोर हैं, साले चोर।" खद्दरपोश ने उसकी तरफ देखा और महारत से मुस्कराकर फौरन मुँह दूसरी तरफ कर लिया। बाहर से अँधेरा जैसे बहकर डब्बे में आ रहा था। लोगों के चेहरे फीके पड़ गये थे, सोल्जर ने अपना बिस्तरा बिछा लिया था और अब फट-फट-फट उसकी शिकनें मिटा रहा था। लड़का बेंच पर खड़े होकर उसकी तरफ अजीब लालसा से देखने लगा, बिस्तरा ठीक कर सोल्जर ने लड़के की तरफ देखा। वह उसे और उससे ज्यादा उसकी माँ को हँसाने की कोशिश में भाँड़ों-सा मुँह बना रहा था।

खद्दरपोश ने आखिर पूछा –

“तुम कौन रेजीमेंट में हो?”

“146 गुरखा राइफल्स”, - सोल्जर वैसे ही बच्चे से उलझा हुआ था।

“कहाँ है तुम्हारा रेजीमेंट?”

“मऊ कैंट में।”

“लड़ाई होने वाली है।” - स्टूडेंट ने सिगरेट जलाते हुए कहा।

खद्दरपोश फिर महारत से मुस्कराया, महिला का पति जो फिर ऊँघ-सा गया था, जगकर खाँसने लगा। लड़के को खिड़की से खींचकर बैठाते उसने महिला से कहा - ”देवी, सरधनेवाले ने मेरठ में घाँस का ठेका लिया है।”

महिला ने गंभीर मुँह बनाए कमर खुजलाते हुए कहा - ”हाँ।”

सोल्जर बोल रहा था... वह हाल में पेंशन पा जाएगा - मैं था दरबार सिंह की रेजीमेंट में, दरबार सिंह वही, जिसे विक्टोरिया क्रॉस मिला था...।

महिला के पति ने कहा - ”लड़ाई हुई तो देवी बन जाएगा बड़ा साब, सबसे बड़ा करनैल मिहरवान है, जो...” महिला ने जँभाते हुए कहा - ”अब लो फौज का ठीका, मजा तो अब है...” सोल्जर अपने छोटे-छोटे पीले झुर्रीदार हाथ हवा में फहराकर कुछ कह रहा था - ”इन्हीं हाथों में सन् 14 में चार राष्ट्रों ने एक राइफल थमा दी थी कि वह अपने ही जैसे दो हाथ-पैरवाले जानवरों का शिकार करे...” महिला ने कुछ चमक से भर्त्सना की... ”डले धरे हैं इस गांधीजी की गर्दी में... गांधी ने तो अपनी मिलें खड़ी कर लीं...” बच्चा डिब्बे भर में घूम-घूमकर खिड़कियों को बार-बार गिन रहा था। खद्दरपोश ने उसे अपने सामने से हटाकर महिला की तरफ देखा और फिर महारत से मुस्कराया।

स्टूडेंट ने जोर से कहा - ”लेकिन तुम किसलिए लड़े थे, तुम्हें क्या पल्ले पड़ा, चमकीले बटन, मुर्दे के तन से उतारी हुई वर्दियाँ, गरमी, सूजाकवाली बदचलन नर्सें?” ... सोल्जर (डिब्बे में फीकी नीली रोशनी हो गयी थी) जोर से बोलकर प्रतिवाद कर रहा था - जर्मन हस्पताल, खाइयाँ... इंग्रेज तो भूलनेवाले ठहरे...

और मैं खिड़की पर सर रखकर ऊँघ गया।

जगा। डिब्बे में तीखी गरम रोशनी थी, खद्दरपोश उतर चुका था, महिला और उसके पति सो रहे थे, स्टूडेंट वैसे ही धुएँ के लच्छे बना रहा था। लड़का सोल्जर के बिस्तरे पर

बैठा था, उसने जले हुए सिगरेट जमा किए थे। वह उन्हें गिन रहा था। एक, दो, तीन... पाँच।

वह कुल दस थे।

('हंस' (मासिक), बनारस, वर्ष 9, अंक : 12, सितम्बर, 1939)

.